[2016] 11 एस.सी.आर. 1

ललितेश्वर प्रसाद सिंह और अन्य

बनाम

एस. पी. श्रीवास्तव (मृत), विधिक प्रतिनिधि के माध्यम से

(2011 की दीवानी अपील संख्या 4426)

15 दिसम्बर, 2016

[आर. के. अग्रवाल और आर. भानुमति, न्यायमूर्तिगण]

दीवानी प्रक्रिया संहिता, 1908 - आदेश XLI, नियम 31, 27 - अपील में निर्णय - अपीलीय न्यायालय का कर्तव्य – प्रथम उत्तरदाता-वादी द्वारा द्वितीय उत्तरदाता-प्रतिवादी के विरुद्ध स्वत्व की घोषणा के लिए दायर वाद को विचारण न्यायालय द्वारा खारिज किया गया – अपीलार्थी, द्वितीय उत्तरदाता से वाद संपत्ति में विभिन्न भूखंडों के क्रेता, को उच्च न्यायालय में प्रथम अपील में पक्षकार बनाया गया – उच्च न्यायालय द्वारा विचारण न्यायालय के निष्कर्षों को उलटते हुए और अपीलार्थियों को कोई साक्ष्य पेश करने या कोई अभिव्यक्ति देने का अवसर दिए बिना, वाद डिक्री किया गया – अपील पर, अभिनिर्धारित: एक अपीलीय न्यायालय तथ्यों का अंतिम न्यायालय होता है – प्रथम अपीलीय न्यायालय को अवधारण के बिंदुओं, उन पर निर्णय और ऐसे निर्णय के कारणों को बताना चाहिए – इसके अलावा, जब प्रथम अपीलीय न्यायालय विचारण न्यायालय के निष्कर्षों को उलट देता है, तो उसे स्पष्ट शब्दों में निष्कर्षों को दर्ज करना चाहिए और यह समझाना चाहिए कि विचारण न्यायालय का तर्क कैसे त्रुटिपूर्ण था – वर्तमान मामले में, उच्च न्यायालय ने न तो अवधारण के बिंदु बनाए और न ही प्रतिवादी द्वारा पेश किए गए साक्ष्य पर चर्चा की और केवल वादी द्वारा पेश किए गए साक्ष्य पर विचार किया – प्रथम अपीलीय न्यायालय होने के नाते, उसे वादी के साथ-साथ प्रतिवादी द्वारा पेश किए गए साक्ष्य पर भी विचार करना चाहिए था – विचारण न्यायालय के समक्ष, केवल द्वितीय उत्तरदाता-प्रतिवादी पक्षकार था – हालांकि, अपीलार्थियों को

प्रथम अपील में पक्षकार बनाए जाने के बाद, उच्च न्यायालय को उन्हें अपने इस दावे को प्रमाणित करने के लिए अतिरिक्त साक्ष्य पेश करने का अवसर देना चाहिए था कि वे मूल्य के लिए सद्भावी क्रेता थे – मामले को गुण-दोष के आधार पर नए सिरे से विचार के लिए उच्च न्यायालय को वापस भेजा गया – विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 - धारा 34।

मामले को उच्च न्यायालय को वापस भेजते हुए, न्यायालय ने :

अभिनिर्धारित: 1.1 दीवानी प्रक्रिया संहिता के आदेश XLI नियम 31 के अनुसार, प्रथम अपीलीय न्यायालय के निर्णय में स्पष्ट रूप से अवधारण के बिंदु निर्धारित होने चाहिए, उन पर उसके कारण दर्ज होने चाहिए और साक्ष्य पर आधारित उसके तर्क दिए जाने चाहिए। यह सुस्थापित है कि प्रथम अपीलीय न्यायालय अवधारण के बिंदुओं, उन पर निर्णय और निर्णय के कारणों को बताएगा। हालांकि, यह भी उतना ही सुस्थापित है कि अवधारण का बिंदु/बिंदुओं को तैयार करने की मात्र चूक से प्रथम अपीलीय न्यायालय का निर्णय दूषित नहीं होता है, बशर्ते प्रथम अपीलीय न्यायालय दोनों पक्षों द्वारा पेश किए गए साक्ष्य पर आधारित अपने कारण दर्ज करे। [कंडिका 11][8-ए-डी]

1.2 एक अपीलीय न्यायालय तथ्यों का अंतिम न्यायालय होता है। इसलिए अपीलीय न्यायालय के निर्णय में न्यायालय के विवेक का अनुप्रयोग परिलक्षित होना चाहिए और कारणों के समर्थन से अपने निष्कर्षों को दर्ज करना चाहिए। प्रथम अपील के न्यायालय द्वारा अवधारण के लिए उठने वाले बिंदुओं में मामले में शामिल सभी महत्वपूर्ण प्रश्नों को शामिल करना चाहिए और उन्हें सामान्य और अस्पष्ट नहीं होना चाहिए। भले ही अपीलीय न्यायालय तथ्य के प्रश्न पर एक अलग दृष्टिकोण अपनाने के लिए न्यायोचित होगा, यह संबंधित निष्कर्ष पर पहुंचने में विचारण न्यायाधीश द्वारा दिए गए कारणों का उल्लेख करने के बाद ही किया जाना चाहिए। जब अपीलीय न्यायालय साक्ष्य पर विचारण न्यायालय के विचारों से सहमत होता है, तो उसे साक्ष्य के प्रभाव को फिर से बताने या विचारण न्यायालय द्वारा दिए गए कारणों को दोहराने की आवश्यकता नहीं होती है; विचारण न्यायालय द्वारा दिए गए कारणों

के साथ सामान्य सहमति की अभिव्यक्ति आमतौर पर पर्याप्त होगी। हालांकि, जब प्रथम अपीलीय न्यायालय विचारण न्यायालय के निष्कर्षों को उलट देता है, तो उसे स्पष्ट शब्दों में निष्कर्षों को दर्ज करना चाहिए और यह समझाना चाहिए कि विचारण न्यायालय का तर्क कैसे त्रुटिपूर्ण है। [कंडिका 12, 13][8-डी-ई; 10-जी-एच; 11-ए-बी]

विनोद कुमार बनाम गंगाधर (2015) 1 एससीसी 391: 2014 (10) एस.सी.आर. 1050 - पर अवलंबन किया गया।

1.3 "उपरोक्त के आलोक में, जब वर्तमान मामले पर विचार किया जाता है, तो यह पाया जाता है कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XLI नियम 31 के संदर्भ में, उच्च न्यायालय ने न तो अवधारण के बिंदु बनाए और न ही प्रतिवादियों द्वारा पेश किए गए साक्ष्य पर चर्चा की। प्रथम उत्तरदाता-वादी द्वारा पेश किए गए दस्तावेजी साक्ष्य को द्वितीय उत्तरदाता-प्रतिवादी ने खंडित किया था। अपने बचाव के अभिवचन के समर्थन में, द्वितीय उत्तरदाता-प्रतिवादी ने कई गवाहों की जांच करके मौखिक साक्ष्य पेश किए थे। इसके अतिरिक्त, द्वितीय उत्तरदाता-प्रतिवादी ने मुख्य रूप से प्रथम उत्तरदाता-वादी की स्वीकृति पर अवलंबन किया।" [कंडिका 14][11-बी-डी]

1.4 उच्च न्यायालय ने द्वितीय उत्तरदाता-प्रतिवादी द्वारा अवलंबन की गई प्रथम उत्तरदाता-वादी की उपर्युक्त स्वीकृति की जांच नहीं की है और न ही द्वितीय उत्तरदाता-प्रतिवादी द्वारा पेश किए गए मौखिक साक्ष्य पर विचार किया है। तथ्यों पर अंतिम न्यायालय, प्रथम अपीलीय न्यायालय होने के नाते, उसे वादी के साथ-साथ प्रतिवादी दोनों द्वारा पेश किए गए साक्ष्य पर विचार करना चाहिए था। लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि उसने केवल प्रथम उत्तरदाता-वादी द्वारा पेश किए गए साक्ष्य पर विचार किया है और द्वितीय उत्तरदाता-प्रतिवादी द्वारा पेश किए गए साक्ष्य और प्रथम उत्तरदाता-वादी के बयान में कथित अंतर्निहित विरोधाभासों पर विचार नहीं किया है। [कंडिका 14][11-एफ-एच]

1.5 अपीलार्थी द्वितीय उत्तरदाता-प्रतिवादी से वाद संपत्ति में विभिन्न भूखंडों के क्रेता हैं। अपीलार्थियों को अपील में पक्षकार बनाए जाने के बाद, उन्हें कोई साक्ष्य पेश करने या अपनी अभिव्यक्ति करने का कोई अवसर नहीं दिया गया। उच्च न्यायालय ने केवल प्रथम उत्तरदाता-वादी द्वारा पेश किए गए साक्ष्य का उल्लेख किया और सीधे यह निष्कर्ष दिया कि द्वितीय उत्तरदाता-प्रतिवादी द्वारा वाद संपत्तियों पर अपना स्वत्व स्थापित करने में विफलता ने अपीलार्थियों को उन वाद-अनुसूची संपत्तियों पर कोई स्वत्व या हित का दावा करने से रोक दिया, क्योंकि उन्होंने प्रतिवादियों से स्वत्व प्राप्त किया था। अपीलार्थियों को प्रथम अपील में पक्षकार बनाए जाने के बाद, अपीलार्थियों को अवसर दिए बिना और वर्तमान अपीलार्थियों के दावे की जांच किए बिना, ऐसा निष्कर्ष दर्ज करना अनुचित था।[कंडिका 16][12-ई, एफ-एच]

विधि-वाद संदर्भ

2014 (10) एस.सी.आर. 1050 अवलंबन किया गया कंडिका 12

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकारः 2011 की दीवानी अपील संख्या 4426

पटना उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार के प्रथम अपील संख्या 230/2007 में दिनांक 05.01.2011 के निर्णय और आदेश से।

अपीलार्थिगण के लिए अधिवक्तागणः एस. के. भट्टाचार्य, सुरेश भारती, प्रमोद कुमार।

उत्तरदातागण के लिए अधिवक्तागणः आर. बसंत, वरिष्ठ अधिवक्ता, अमित पवन, अभिषेक अमृतंशु, आनंद नंदन, ज्ञान प्रकाश श्रीवास्तव, एस. के. वर्मा।

न्यायालय का निर्णय सुनाया गया

आर. भानुमति, न्यायमूर्ति यह अपील पटना उच्च न्यायालय के प्रथम अपील संख्या 230/2007 के दिनांक 30.07.2007 के निर्णय से उत्पन्न हुई है, जिसने विचारण न्यायालय के निर्णय को उलट दिया और इस प्रकार प्रथम उत्तरदाता-वादी के स्वत्व की घोषणा के वाद को डिक्री कर दिया।

2. पहले उत्तरदाता-वादी और तारावती देवी की वंशावली इस तरह है:-

महावीर प्रसाद

तेज प्रताप नारायण

जगदम्बी प्रसाद

रूद्र नारायण

महेन्द्र प्रसाद

कांता प्रसाद

कांजी प्रसाद

गिरिश चंद्र प्रसाद(1960)

निःसंतान मृत

निःसंतान मृत

तारावती देवी(मृत्यु 1985 में)

शैलेन्द्र प्रसाद

सुरेश चंद प्रसाद (1942)

वादी

देवकी देवी

सीता देवी

उमाशंकर प्रसाद (1970)

मृत

निःसंतान मृत

(अविवाहित मृत)

तारावती देवी के माता-पिता की वंशावली इस प्रकार है:-

धनुकधारी सहाय

तारावती देवी

लक्ष्मी देवी

रक्शन देवी

बैद्य नाथ(प्रतिवादी)

3. प्रथम उत्तरदाता-वादी शैलेंद्र प्रसाद श्रीवास्तव ने द्वितीय उत्तरदाता-प्रतिवादी बैद्य नाथ प्रसाद वर्मा के विरुद्ध ग्राम बैरिया के खाता संख्या 31 के खसरा संख्या 123, 124, 269, 274, 997 और 959 तथा ग्राम कोलोहा पगमबरपुर की अनुसूची । और अनुसूची ॥ संपत्तियों के संबंध में अपने स्वत्व की घोषणा के लिए एक वाद दायर किया, जिसमें यह आरोप लगाया गया कि अनुसूची । और ॥ में विस्तृत वाद संपत्ति गिरीश चंद्र प्रसाद की थी। वादी

का मामला यह है कि संशोधित सर्वेक्षण अभिलेख में, गिरीश चंद्र प्रसाद की विधवा तारावती देवी ने संपत्ति को अपने पोते उमाशंकर प्रसाद के नाम पर दर्ज करवा लिया। उक्त उमाशंकर प्रसाद वर्ष 1965 में तारावती देवी के जीवनकाल में ही मर गए। प्रथम उत्तरदाता-वादी ने आगे आरोप लगाया कि वह, परिवार का एकमात्र पुरुष सदस्य होने के नाते, तारावती देवी के साथ रहता था और उनकी मृत्यु के बाद सभी संस्कार उसने किए। प्रथम उत्तरदाता-वादी के आगे का मामला यह है कि जब वह भिलाई में काम कर रहा था, तो उसे पता चला कि द्वितीय उत्तरदाता-प्रतिवादी आंचल कर्मचारी के साथ मिलीभगत करके भू-राजस्व रसीद प्राप्त करने की कोशिश कर रहा है। प्रथम उत्तरदाता-वादी अंचल कार्यालय कांती गया और प्रतिवादी के नाम पर भू-राजस्व रसीद को रद्द करवा दिया। द्वितीय उत्तरदाता-प्रतिवादी बैद्य नाथ प्रसाद ने दाखिल-खारिज अपील दायर की। जब प्रथम उत्तरदाता-वादी को पता चला कि द्वितीय उत्तरदाता-प्रतिवादी यह आरोप लगाते हुए कि वाद संपत्ति तारावती देवी की थी, तारावती देवी के माध्यम से वाद संपत्ति पर स्वत्व का दावा करने की कोशिश कर रहा है, तो तारावती देवी का सगोत्र होने के नाते प्रथम उत्तरदाता-वादी ने अपने स्वत्व की घोषणा के लिए एक वाद दायर किया।

4. वाद का विरोध करते हुए, द्वितीय उत्तरदाता-प्रतिवादी ने एक लिखित बयान दायर किया, जिसमें प्रथम उत्तरदाता-वादी के सभी दावों को खारिज कर दिया गया और यह तर्क दिया गया कि विवादित संपत्ति एक श्री धनुधारी सहाय की थी। उक्त धनुधारी सहाय का एक पुत्र श्री वासुदेव प्रसाद था, जिसके आगे एक पुत्र और तीन पुत्रियाँ थीं, अर्थात् सुश्री तारावती देवी, सुश्री लक्ष्मी देवी और सुश्री रंजन देवी। सुश्री रंजन देवी अपने पिता के जीवनकाल में ही मर गईं। द्वितीय उत्तरदाता-प्रतिवादी ने आगे अभिवचन दिया कि वाद संपत्ति को विभिन्न पक्षों को बेचा गया है और द्वितीय उत्तरदाता-प्रतिवादी के विरुद्ध प्रथम उत्तरदाता-वादी द्वारा दायर वाद खारिज किए जाने योग्य है। पुत्र वासुदेव प्रसाद और अन्य की मृत्यु के बाद, विवादित संपत्ति सुश्री तारावती देवी के नाम में निहित हो गई। द्वितीय उत्तरदाता-प्रतिवादी

धनुधारी सहाय का सबसे निकटतम कानूनी उत्तराधिकारी था और सुश्री तारावती देवी की 1985 में मृत्यु के बाद, हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 15(2) के अनुसार, संपत्ति उत्तराधिकार द्वारा द्वितीय उत्तरदाता-प्रतिवादी पर विरासित हुई और उसके नाम पर दाखिल-खारिज किया गया और उसने वाद संपत्ति के संबंध में भू-राजस्व का भुगतान करना शुरू कर दिया, जिसका दाखिल-खारिज उसके नाम पर किया गया था।

5. उपरोक्त अभिवचनों पर, विचारण न्यायालय में 9 मुद्दे तैयार किए गए। प्रथम उत्तरदाता-वादी के साथ-साथ द्वितीय उत्तरदाता-प्रतिवादी की ओर से कई गवाहों की जांच की गई। मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य पर विचार करने के बाद, विचारण न्यायालय ने यह माना कि प्रथम उत्तरदाता-वादी ने यह दिखाने के लिए कोई दस्तावेज पेश नहीं किया है कि संपत्ति तेज प्रताप नारायण के परिवार की थी। विचारण न्यायालय ने माना कि अपने पिता धनुधारी सहाय की मृत्यु के बाद, तारावती देवी विवादित संपत्ति की एकमात्र कानूनी उत्तराधिकारी बन गईं और हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 15(1)(बी) के अनुसार, यदि मृत महिला ने अपने माता-पिता से संपत्ति अर्जित की है, तो वह मृतक के माता-पिता के उत्तराधिकारियों द्वारा विरासित होगी। यह आगे माना गया कि यह दिखाने के लिए कोई रिकॉर्ड नहीं है कि तारावती देवी को विवादित संपत्ति उनके पति या ससुर से मिली थी। विचारण न्यायालय ने यह मानते हुए वाद को खारिज कर दिया कि प्रथम उत्तरदाता-वादी ने वाद संपत्ति पर अपना स्वत्व साबित करने के लिए आवश्यक दस्तावेज पेश नहीं किए हैं।

6. अपील पर, उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय के निष्कर्षों को उलट दिया और यह माना कि संशोधित सर्वेक्षण अधिकार अभिलेख के अनुसार, संपत्ति गिरीश चंद्र प्रसाद के पोते उमाशंकर प्रसाद के नाम पर दर्ज थी और गिरीश चंद्र प्रसाद की मृत्यु पर, उनकी विधवा तारावती देवी संपत्ति की पूर्ण स्वामी बन गईं और 1985 में उनकी मृत्यु पर, संपत्ति उनके सगोत्र—प्रथम उत्तरदाता-वादी पर विरासित हुई। मौखिक साक्ष्य और प्रथम उत्तरदाता-वादी द्वारा अपने नाम और गिरीश चंद्र प्रसाद के नाम पर पेश की गई किराया रसीदों (प्रदर्श 1-1/जे और

प्रदर्श 1/के-1/एम) का संदर्भ देने के बाद, यह माना गया कि प्रथम उत्तरदाता-वादी का गिरीश चंद्र प्रसाद के साथ सगोत्र संबंधी होने का मामला सिद्ध हो गया और इस प्रकार वादी ने वाद संपत्ति पर अपना स्वत्व सिद्ध कर दिया। इन तर्कों के आधार पर, उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय के निष्कर्षों को उलट दिया और प्रथम अपील को स्वीकार कर लिया तथा वादी के वाद को डिक्री कर दिया।

7. अपीलार्थियों के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि यद्यपि प्रथम उत्तरदाता-वादी द्वारा दायर वाद स्वत्व की घोषणा के लिए था, लेकिन वाद संपत्ति से संबंधित कोई स्वत्व दस्तावेज न्यायालय के समक्ष पेश नहीं किया गया था और पेश किए गए दस्तावेज केवल किराया रसीदें और दाखिल-खारिज रिकॉर्ड थे, और इन दस्तावेजों पर स्वत्व की कोई उपधारणा नहीं हो सकती थी, और इसलिए, उच्च न्यायालय उन दस्तावेजों को स्वत्व दस्तावेज मानकर और विचारण न्यायालय के निर्णय को उलटकर सही नहीं था। यह प्रस्तुत किया गया कि अपने प्रति-परीक्षण में, प्रथम उत्तरदाता-वादी (अभियोजन साक्षी-3) ने स्वीकार किया कि तारावती देवी ने दो एकड़ और पंद्रह डिसमिल भूमि खरीदी थी और प्रथम उत्तरदाता-वादी द्वारा की गई इस स्वीकृति को उच्च न्यायालय द्वारा ठीक से सराहना नहीं की गई थी। अपीलार्थियों का आगे तर्क है कि उच्च न्यायालय विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 34 के परंतुक के आलोक में इस बात की सराहना करने में विफल रहा कि कब्जे के किसी भी परिणामी अनुतोष के बिना स्वत्व की घोषणा के लिए वाद पोषणीय नहीं था। अपीलार्थियों का मुख्य अभिवचन है कि जब उच्च न्यायालय ने अपीलार्थियों को प्रथम अपील में पक्षकार बनाया, तो प्रथम अपीलीय न्यायालय होने के नाते, उच्च न्यायालय को अपीलार्थियों को अपने दस्तावेज और अभिव्यक्ति दायर करने का अवसर प्रदान करना चाहिए था और उच्च न्यायालय का निर्णय प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन है क्योंकि उसने उन अपीलार्थियों को अवसर नहीं दिया जो प्रतिफल के लिए सद्भावी क्रेता हैं।

8. इसके विपरीत, प्रथम उत्तरदाता-वादी के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि अधिकार अभिलेख (प्रदर्श 13 श्रृंखला) गिरीश चंद्र प्रसाद के पोते उमाशंकर प्रसाद के नाम पर था और इस अधिकार अभिलेख की पुष्टि उन किराया रसीदों से हुई थी जो गिरीश चंद्र प्रसाद के नाम के साथ-साथ स्वयं प्रथम उत्तरदाता-वादी के नाम पर भी थीं। यह आगे प्रस्तुत किया गया कि दस्तावेजी साक्ष्य के अलावा, अभियोजन साक्षी-3, अभियोजन साक्षी-4, अभियोजन साक्षी-10, अभियोजन साक्षी-13 और अभियोजन साक्षी-14 के मौखिक साक्ष्य ने यह स्थापित किया कि वाद संपत्ति गिरीश चंद्र प्रसाद की थी। यह तर्क दिया गया कि गिरीश चंद्र प्रसाद संपत्ति के मालिक थे और हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 15 के अनुसार, प्रथम उत्तरदाता-वादी, तारावती देवी का सगोत्र संबंधी होने के नाते, वाद संपत्ति को विरासित किया और मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य की सराहना पर, उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय के निर्णय को उलटकर प्रथम उत्तरदाता-वादी के स्वत्व की घोषणा सही की। यह आगे तर्क दिया गया कि दिए गए अवसरों के बावजूद, द्वितीय उत्तरदाता-प्रतिवादी ने अपीलार्थियों के पक्ष में निष्पादित बिक्री विलेख पेश नहीं किए, जो स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि अपीलार्थी मूल्य के लिए सद्भावी क्रेता नहीं हैं और उच्च न्यायालय ने सही माना कि अपीलार्थी द्वितीय उत्तरदाता-प्रतिवादी से बेहतर स्वत्व का दावा नहीं कर सकते।

9. विचार के लिए उठने वाला प्रश्न यह है कि क्या संपत्ति गिरीश चंद्र प्रसाद की थी और उनकी मृत्यु के बाद, उनकी पत्नी-तारावती देवी को उनके पति की संपत्ति उत्तराधिकार में मिली और उनकी मृत्यु के बाद उनके अज्ञात संबंधी प्रथम उत्तरदाता-वादी पर विरासित हुई; या क्या यह तारावती देवी के पिता धनुधारी सहाय की थी जिनसे तारावती देवी को उत्तराधिकार मिला और क्या हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 15(2) के अनुसार द्वितीय उत्तरदाता-प्रतिवादी इसे उत्तराधिकार प्राप्त करने का हकदार है।

10. उच्च न्यायालय ने विशेष रूप से दो मुख्य मुद्दों का समाधान किया है:— एक जो वादपत्र में निहित वंशावली तालिका की सत्यता से संबंधित है और दूसरा प्रथम उत्तरदाता-

वादी द्वारा दायर दस्तावेजों—अधिकार अभिलेख और किराया रसीदों—के आधार पर वाद अनुसूची संपत्ति पर प्रथम उत्तरदाता-वादी के स्वत्व के अवधारण से संबंधित है। अपीलार्थियों का अभिवचन है कि उच्च न्यायालय, निष्कर्ष पर पहुंचते समय, रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्रियों का, विशेष रूप से द्वितीय उत्तरदाता-प्रतिवादी द्वारा पेश किए गए साक्ष्य का, ठीक से विश्लेषण नहीं किया। अपीलार्थियों का आगे अभिवचन है कि उच्च न्यायालय प्रथम अपीलीय न्यायालय होने के नाते, तथ्यों का अंतिम न्यायालय होने के कारण, साक्ष्य का विश्लेषण करने और अपने तर्कों को दर्ज करने के लिए बाध्य था, खासकर जब उसने विचारण न्यायालय के निष्कर्षों को उलट दिया।

11. सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XLI नियम 31 के अनुसार, प्रथम अपीलीय न्यायालय के निर्णय में स्पष्ट रूप से अवधारण के बिंदु निर्धारित होने चाहिए, उन पर उसके कारण दर्ज होने चाहिए और साक्ष्य पर आधारित उसके तर्क दिए जाने चाहिए। आदेश XLI नियम 31 सिविल प्रक्रिया संहिता इस प्रकार है:—

> **आदेश XLI नियम 31: निर्णय की विषय-वस्तु, तारीख और हस्ताक्षर।** - अपीलीय न्यायालय का निर्णय लिखित में होगा और उसमें निम्नलिखित बातें होंगी:
>
> (ए) अवधारण के बिंदु;
>
> (बी) उन पर निर्णय;
>
> (सी) निर्णय के कारण; और
>
> (डी) जहाँ अपील की गई डिक्री उलट दी गई है या परिवर्तित कर दी गई है, वहाँ वह अनुतोष जिसका अपीलार्थी हकदार है;
>
> और जिस समय वह सुनाया जाए, उस समय उस पर न्यायाधीश या उसमें सहमत होने वाले न्यायाधीशों द्वारा हस्ताक्षर और दिनांकित किया जाएगा।"

यह सुस्थापित है कि प्रथम अपीलीय न्यायालय अवधारण के बिंदुओं, उन पर निर्णय और निर्णय के कारणों को बताएगा। हालांकि, यह भी उतना ही सुस्थापित है कि अवधारण का

बिंदु/बिंदुओं को तैयार करने की मात्र चूक से प्रथम अपीलीय न्यायालय का निर्णय दूषित नहीं होता है, बशर्ते प्रथम अपीलीय न्यायालय दोनों पक्षों द्वारा पेश किए गए साक्ष्य पर आधारित अपने कारण दर्ज करे।

12. एक अपीलीय न्यायालय तथ्यों का अंतिम न्यायालय होता है। इसलिए अपीलीय न्यायालय के निर्णय में न्यायालय के विवेक का अनुप्रयोग परिलक्षित होना चाहिए और कारणों के समर्थन से अपने निष्कर्षों को दर्ज करना चाहिए। प्रथम अपीलीय न्यायालय की शक्तियों और कर्तव्यों से संबंधित कानून विधिक प्रावधानों और न्यायिक घोषणाओं द्वारा सुदृढ़ है। प्रथम अपीलीय न्यायालय के कर्तव्य की प्रकृति और दायरे पर विचार करते हुए, ***विनोद कुमार बनाम गंगाधर*** (2015) 1 एससीसी 391 में, यह माना गया था कि:—

"**12.** संतोष हजारी बनाम पुरुषोत्तम तिवारी (2001) 3 एससीसी 179 में, इस न्यायालय ने निम्नलिखित माना: (एससीसी पृष्ठ 188-89, कंडिका 15)

> "15. ... अपीलीय न्यायालय के पास विचारण न्यायालय के निष्कर्षों को उलटने या पुष्टि करने का क्षेत्राधिकार है। प्रथम अपील पक्षों का एक मूल्यवान अधिकार है और जब तक कानून द्वारा प्रतिबंधित न हो, पूरा मामला उसमें तथ्य और कानून दोनों के प्रश्नों पर पुनर्विचार के लिए खुला है। इसलिए, अपीलीय न्यायालय के निर्णय में विवेक का सचेत अनुप्रयोग परिलक्षित होना चाहिए और अपीलीय न्यायालय के निर्णय के लिए पक्षों द्वारा प्रस्तुत और बल दिए गए सभी उठने वाले मुद्दों के साथ कारणों के समर्थन से निष्कर्षों को दर्ज करना चाहिए।... तथ्य के निष्कर्ष को उलटते समय अपीलीय न्यायालय को विचारण न्यायालय द्वारा दिए गए तर्क के साथ निकटता से आना चाहिए और फिर एक अलग निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए अपने स्वयं के कारणों को निर्धारित करना चाहिए। यह आगे की अपील की सुनवाई करने वाले न्यायालय को संतुष्ट करेगा कि प्रथम अपीलीय न्यायालय ने उससे अपेक्षित कर्तव्य का निर्वहन किया है।"

इस उपरोक्त दृष्टिकोण का अनुसरण इस न्यायालय के मधुकर बनाम संग्राम (2001) 4 एससीसी 756 में तीन-न्यायाधीशों की पीठ के निर्णय द्वारा किया गया है, जिसमें यह दोहराया गया था कि प्रथम अपील के न्यायालय के रूप में बैठते हुए, निष्कर्षों को दर्ज करने से पहले सभी मुद्दों और पक्षों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य से निपटना उच्च न्यायालय का कर्तव्य है।

13. एच.के.एन. स्वामी बनाम इरशाद बशीथ (2005) 10 एससीसी 243 में, इस न्यायालय ने निम्नलिखित कहा: (एससीसी पृष्ठ 244, कंडिका 3)

> "3. प्रथम अपील का निर्णय तथ्यों के साथ-साथ कानून पर भी किया जाना है। प्रथम अपील में पक्षों को कानून के साथ-साथ तथ्यों के प्रश्नों पर भी सुने जाने का अधिकार है और प्रथम अपीलीय न्यायालय को सभी मुद्दों को संबोधित करना और कारण बताते हुए मामले का निर्णय करना आवश्यक है। दुर्भाग्य से, वर्तमान मामले में, उच्च न्यायालय ने न तो तथ्यों पर और न ही कानून पर कोई निष्कर्ष दर्ज किया है। प्रथम अपीलीय न्यायालय के रूप में बैठते हुए, स्वत्व के संबंध में निष्कर्ष दर्ज करने से पहले सभी मुद्दों और पक्षों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य से निपटना उच्च न्यायालय का कर्तव्य था।"

14. फिर से जगन्नाथ बनाम अरुलप्पा (2005) 12 एससीसी 303 में, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 96 के दायरे पर विचार करते हुए, इस न्यायालय ने निम्नलिखित अवलोकन किया: (एससीसी पृष्ठ 303, कंडिका 2)

15. फिर से बी.वी. नागेश बनाम एच.वी. श्रीनिवासा मूर्ति (2010) 13 एससीसी 530 में, इस न्यायालय ने इस न्यायालय के सभी पूर्व निर्णयों को ध्यान में रखते हुए, इन शब्दों के साथ उपर्युक्त सिद्धांत को दोहराया: (एससीसी पृष्ठ 530-31, कंडिका 3-5)

> "3. अपीलीय न्यायालय/उच्च न्यायालय द्वारा नियमित प्रथम अपील का निपटारा कैसे किया जाना है, इस पर इस न्यायालय द्वारा विभिन्न निर्णयों में विचार किया गया है।

आदेश 41 सिविल प्रक्रिया संहिता. मूल डिक्रियों से अपील से संबंधित है। विभिन्न नियमों में, नियम 31 यह अनिवार्य करता है कि अपीलीय न्यायालय का निर्णय निम्नलिखित को बताएगा:

(ए) अवधारण के बिंदु;

(बी) उन पर निर्णय;

(सी) इस फ़ैसले के कारण; और

(डी) जहाँ अपील की गई डिक्री उलट दी गई है या परिवर्तित कर दी गई है, वहाँ वह अनुतोष जिसका अपीलार्थी हकदार है।

4. अपीलीय न्यायालय के पास विचारण न्यायालय के निष्कर्षों को उलटने या पुष्टि करने का क्षेत्राधिकार है। प्रथम अपील पक्षों का एक मूल्यवान अधिकार है और जब तक कानून द्वारा प्रतिबंधित न हो, पूरा मामला उसमें तथ्य और कानून दोनों के प्रश्नों पर पुनर्विचार के लिए खुला है। इसलिए, अपीलीय न्यायालय के निर्णय में विवेक का सचेत अनुप्रयोग परिलक्षित होना चाहिए और अपीलीय न्यायालय के निर्णय के लिए पक्षों द्वारा प्रस्तुत और बल दिए गए सभी उठने वाले मुद्दों के साथ कारणों के समर्थन से निष्कर्षों को दर्ज करना चाहिए। प्रथम अपील के न्यायालय के रूप में बैठते हुए, निष्कर्षों को दर्ज करने से पहले सभी मुद्दों और पक्षों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य से निपटना उच्च न्यायालय का कर्तव्य था। प्रथम अपील एक मूल्यवान अधिकार है और पक्षों को कानून और तथ्य दोनों के प्रश्नों पर सुने जाने का अधिकार है और प्रथम अपील में निर्णय को कानून और तथ्य के सभी मुद्दों को संबोधित करना चाहिए और निष्कर्षों के समर्थन में कारण देते हुए इसका निर्णय करना चाहिए। (देखें: संतोष हजारी बनाम पुरुषोत्तम तिवारी (2001) 3 एससीसी 179, एससीसी पृष्ठ 188, कंडिका 15 और मधुकर बनाम संग्राम (2001) 4 एससीसी 756, एससीसी पृष्ठ 758, कंडिका 5)

5. उपरोक्त लाभकारी सिद्धांतों के मद्देनजर, आक्षेपित निर्णय पर जाने के बाद, हम महसूस करते हैं कि उच्च न्यायालय प्रथम अपीलीय न्यायालय के रूप में अपने ऊपर डाले गए दायित्व का निर्वहन करने में विफल रहा है। हमारे विचार में, अपील में दिया गया निर्णय गूढ है और संबंधित पहलुओं में से किसी को भी ध्यान में नहीं रखा गया है। अपील का निर्णय असंतोषजनक ढंग से किया गया है। नियमित प्रथम अपील में दिए गए निर्णय की हमारी सावधानीपूर्वक जांच से पता चलता है कि यह उन विचारों से कम है जिनकी अपेक्षा प्रथम अपील के न्यायालय से की जाती है। तदनुसार, हम दोनों पक्षों के दावे के गुण-दोष में जाए बिना, उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय और डिक्री को अपास्त करते हैं और नियमित प्रथम अपील को कानून के अनुसार इसके नए सिरे से निपटारे के लिए उच्च न्यायालय को वापस भेजते हैं।

13. प्रथम अपील के न्यायालय द्वारा अवधारण के लिए उठने वाले बिंदुओं में मामले में शामिल सभी महत्वपूर्ण प्रश्नों को शामिल करना चाहिए और उन्हें सामान्य और अस्पष्ट नहीं होना चाहिए। भले ही अपीलीय न्यायालय तथ्य के प्रश्न पर एक अलग दृष्टिकोण अपनाने के लिए न्यायोचित होगा, यह संबंधित निष्कर्ष पर पहुंचने में विचारण न्यायाधीश द्वारा दिए गए कारणों का उल्लेख करने के बाद ही किया जाना चाहिए। जब अपीलीय न्यायालय साक्ष्य पर विचारण न्यायालय के विचारों से सहमत होता है, तो उसे साक्ष्य के प्रभाव को फिर से बताने या विचारण न्यायालय द्वारा दिए गए कारणों को दोहराने की आवश्यकता नहीं होती है; विचारण न्यायालय द्वारा दिए गए कारणों के साथ सामान्य सहमति की अभिव्यक्ति आमतौर पर पर्याप्त होगी। हालांकि, जब प्रथम अपीलीय न्यायालय विचारण न्यायालय के निष्कर्षों को उलट देता है, तो उसे स्पष्ट शब्दों में निष्कर्षों को दर्ज करना चाहिए और यह समझाना चाहिए कि विचारण न्यायालय का तर्क कैसे त्रुटिपूर्ण है।

14. उपरोक्त के आलोक में, जब हम वर्तमान मामले पर विचार करते हैं, तो हम पाते हैं कि सिविल प्रक्रिया संहिता. के आदेश XLI नियम 31 के संदर्भ में, उच्च न्यायालय ने न तो अवधारण के बिंदु बनाए और न ही प्रतिवादियों द्वारा पेश किए गए साक्ष्य पर चर्चा की। ऐसा प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय ने केवल दो पहलुओं पर विचार किया:— (i) प्रथम उत्तरदाता-वादी द्वारा प्रस्तुत वंशावली तालिका; (ii) प्रथम उत्तरदाता-वादी द्वारा पेश किए गए दस्तावेजी साक्ष्य, अर्थात् प्रदर्श 13 श्रृंखला—सर्वेक्षण अधिकार अभिलेख में प्रविष्टि और प्रथम उत्तरदाता-वादी द्वारा दायर किराया रसीदें (प्रदर्श 1/जे और प्रदर्श 1/के से 1/एम)। प्रथम उत्तरदाता-वादी द्वारा पेश किए गए दस्तावेजी साक्ष्य को द्वितीय उत्तरदाता-प्रतिवादी ने खंडित किया है। अपने बचाव के अभिवचन के समर्थन में, द्वितीय उत्तरदाता-प्रतिवादी ने कई गवाहों की जांच करके मौखिक साक्ष्य पेश किए हैं। इसके अतिरिक्त, द्वितीय उत्तरदाता-प्रतिवादी ने मुख्य रूप से प्रथम उत्तरदाता-वादी (अभियोजन साक्षी-3) के निम्नलिखित साक्ष्य पर अवलंबन किया:—

> "तारावती देवी ने कुल दो एकड़ और पंद्रह डिसमिल भूमि खरीदी थी। मैं बिक्री विलेखों की संख्या नहीं बता सकता। मुझे उक्त भूमि पर उनके नाम के त्यागपत्र के बारे में कोई जानकारी नहीं है। उनकी मृत्यु के समय तक, उनके द्वारा खरीदी गई भूमि तारावती देवी के पास रही। विवादित भूमि का क्षेत्रफल दो एकड़ और पंद्रह डिसमिल है। वर्तमान वाद में विवादित भूमि तारावती देवी द्वारा खरीदी गई भूमि है।"

ऐसा प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय ने प्रथम उत्तरदाता-वादी की उपर्युक्त स्वीकृति की जांच नहीं की है और न ही द्वितीय उत्तरदाता-प्रतिवादी द्वारा पेश किए गए मौखिक साक्ष्य पर विचार किया है। तथ्यों पर अंतिम न्यायालय, प्रथम अपीलीय न्यायालय होने के नाते, उच्च न्यायालय को प्रथम उत्तरदाता-वादी के साथ-साथ द्वितीय उत्तरदाता-प्रतिवादी द्वारा पेश किए गए साक्ष्य पर विचार करना चाहिए था। लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय ने

केवल प्रथम उत्तरदाता-वादी द्वारा पेश किए गए साक्ष्य पर विचार किया है और द्वितीय उत्तरदाता-प्रतिवादी द्वारा पेश किए गए साक्ष्य और प्रथम उत्तरदाता-वादी के बयान में कथित अंतर्निहित विरोधाभासों पर विचार नहीं किया है।

15. अपीलार्थियों के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि विचार के लिए उठने वाला एक और मुद्दा विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 34 के परंतुक के आलोक में वाद की पोषणीयता था। अपीलार्थियों के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि प्रथम उत्तरदाता-वादी द्वारा तारावती देवी से संबंधित वाद संपत्तियों के स्वत्व की घोषणा के लिए वाद कब्जे या व्यादेश के किसी भी परिणामी अनुतोष के बिना दायर किया गया था और विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 34 के परंतुक के आलोक में वाद वर्जित था। विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 34 का परंतुक इस प्रकार है:—

> "परंतु कोई भी न्यायालय तब तक ऐसी कोई घोषणा नहीं करेगा जब तक वादी, केवल स्वत्व की घोषणा से अधिक कोई अनुतोष चाहने में सक्षम होते हुए भी, वैसा करने से चूक जाता है।"

विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 34 के उपरोक्त परंतुक की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते हुए, अपीलार्थियों के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि इस अभिवचन पर, विचारण न्यायालय द्वारा विशेष रूप से मुद्दा संख्या 6 तैयार किया गया था और यद्यपि विचारण न्यायालय ने प्रथम उत्तरदाता-वादी के पक्ष में मुद्दे पर निर्णय लिया और उसी को प्रथम अपीलीय न्यायालय में उठाया जा रहा है, उच्च न्यायालय को वाद की पोषणीयता पर अपीलार्थियों द्वारा दिए गए तर्कों पर विचार करना चाहिए था।

16. अपीलार्थी द्वितीय उत्तरदाता-प्रतिवादी से विभिन्न बिक्री विलेखों के तहत वाद संपत्ति में विभिन्न भूखंडों के क्रेता हैं, जिनकी तिथियाँ 22.11.19958, 29.09.1995, 29.03.1996, 07.08.1995, 20.11.2008 और 03.07.2007 हैं। अपीलार्थियों ने सिविल

प्रक्रिया संहिता के आदेश । नियम 10 के तहत उन्हें पक्षकार बनाने के लिए उच्च न्यायालय के समक्ष प्रथम अपील संख्या 230/2007 में अंतर्वर्ती आवेदन संख्या 5250/2010 प्रस्तुत किया और *उक्त* आवेदन को उच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 02.08.2010 के आदेश द्वारा अनुमति दी गई थी। अपीलार्थियों को अपील में पक्षकार बनाए जाने के बाद, उन्हें कोई साक्ष्य पेश करने या अपनी अभिव्यक्ति करने का कोई अवसर नहीं दिया गया। उच्च न्यायालय ने केवल प्रथम उत्तरदाता-वादी द्वारा पेश किए गए साक्ष्य का उल्लेख किया और सीधे यह निष्कर्ष दिया कि द्वितीय उत्तरदाता-प्रतिवादी द्वारा वाद संपत्तियों पर अपना स्वत्व स्थापित करने में विफलता ने अपीलार्थियों को उन वाद-अनुसूची संपत्तियों पर कोई स्वत्व या हित का दावा करने से रोक दिया, क्योंकि उन्होंने प्रतिवादियों से स्वत्व प्राप्त किया था। हमारा विचार है कि अपीलार्थियों को प्रथम अपील में पक्षकार बनाए जाने के बाद, अपीलार्थियों को अवसर दिए बिना और वर्तमान अपीलार्थियों के दावे की जांच किए बिना, ऐसा निष्कर्ष दर्ज करना अनुचित प्रतीत होता है। उन्हें पक्षकार बनाने के बाद, अपीलार्थियों को अवसर दिए बिना, उच्च न्यायालय ने यह अवलोकन करते हुए अपीलार्थियों के दावे को किनारे कर दिया कि अपीलार्थियों ने वाद दायर होने के बाद संपत्ति खरीदी है और यदि द्वितीय उत्तरदाता-प्रतिवादी के पास कोई स्वत्व नहीं था तो हस्तांतरिती को द्वितीय उत्तरदाता-प्रतिवादी द्वारा कोई स्वत्व या हित या कब्जा हस्तांतरित करने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। हम अपीलार्थियों के अभिवचन में सार पाते हैं कि उन्हें उच्च न्यायालय में पक्षकार बनाए जाने के बाद, उन्हें अतिरिक्त साक्ष्य पेश करने और मूल्य के लिए सद्भावी क्रेता होने के अपने दावे को प्रमाणित करने के लिए अपनी अभिव्यक्ति करने का अवसर दिया जाना चाहिए था। हमारे विचार में, अपीलार्थियों को पक्षकार बनाने के बाद, सिविल प्रक्रिया संहिता. के आदेश XLI नियम 27 के संदर्भ में, उच्च न्यायालय को अपीलार्थियों को अतिरिक्त साक्ष्य पेश करने और अपनी अभिव्यक्ति का अवसर देना चाहिए था।

17. प्रथम उत्तरदाता-वादी के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि द्वितीय उत्तरदाता-प्रतिवादी ने लिखित बयान के कंडिका (15) में कहा है कि उसने वाद भूमि के विभिन्न हिस्सों को अलग-अलग व्यक्तियों को बेचा है। यह प्रस्तुत किया गया कि प्रथम उत्तरदाता-वादी द्वारा दायर आवेदन पर, विचारण न्यायालय ने दिनांक 27.10.2005 को एक आदेश पारित किया, जिसमें द्वितीय उत्तरदाता-प्रतिवादी को पंद्रह दिनों के भीतर संबंधित बिक्री विलेखों को पेश करने का निर्देश दिया गया था या अन्यथा उसे उन्हें पेश करने का कोई अधिकार नहीं होगा। वादी के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि उक्त आदेश के बावजूद, द्वितीय उत्तरदाता-प्रतिवादी ने कोई भी बिक्री विलेख पेश नहीं किया और ऐसी स्थिति में, अपीलार्थियों को अवसर प्रदान न करने का अभिवचन उठाने से वर्जित कर दिया गया है और उच्च न्यायालय ने सही माना कि अपीलार्थी द्वितीय उत्तरदाता-प्रतिवादी से बेहतर स्वत्व का दावा नहीं कर सकते। विचारण न्यायालय के समक्ष, केवल द्वितीय उत्तरदाता-प्रतिवादी ही पक्षकार था। द्वितीय उत्तरदाता-प्रतिवादी के विरुद्ध विचारण न्यायालय द्वारा पारित कोई भी आदेश अपीलार्थियों को अतिरिक्त दस्तावेज दायर करके अपना अभिवचन रखने से नहीं रोक सकता है।

18. जैसा कि पहले चर्चा की गई है, उच्च न्यायालय ने प्रतिवादियों द्वारा पेश किए गए साक्ष्य पर विचार नहीं किया है। अपीलार्थियों को प्रथम अपील में पक्षकार बनाने के बाद, आदेश XLI नियम 27 के संदर्भ में, उच्च न्यायालय को अपीलार्थियों को मौखिक और दस्तावेजी दोनों अतिरिक्त साक्ष्य पेश करने और अपनी अभिव्यक्ति करने का अवसर प्रदान करना चाहिए था।

19. परिणाम स्वरूप, उच्च न्यायालय का प्रथम अपील संख्या 230/2007 का दिनांक 30.07.2007 का आक्षेपित निर्णय अपास्त किया जाता है और मामले को नए सिरे से विचार के लिए उच्च न्यायालय को वापस भेजा जाता है । प्रथम उत्तरदाता-वादी, उच्च न्यायालय के

समक्ष अपीलार्थी होने के नाते, मृत द्वितीय उत्तरदाता-प्रतिवादी के विधिक प्रतिनिधियों को पक्षकार बनाने के लिए कदम उठाने का निर्देश दिया जाता है। उच्च न्यायालय दोनों पक्षों को मौखिक और दस्तावेजी दोनों अतिरिक्त साक्ष्य पेश करने के लिए पर्याप्त अवसर प्रदान करेगा और आगे दोनों पक्षों को सुनवाई का पर्याप्त अवसर प्रदान करेगा। चूंकि वाद वर्ष 1994 का है, हम उच्च न्यायालय से कानून के अनुसार अपील का शीघ्रता से निपटारा करने का अनुरोध करते हैं। हम यह स्पष्ट करते हैं कि हमने मामले के गुण-दोष पर कोई राय व्यक्त नहीं की है।

दिव्या पाण्डेय　　　　　　　　　　मामले को उच्च न्यायालय को वापस भेजा गया।

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।